संस्कृत वाङ्मय में शासन एवं प्रशासन की अवधारणा : एक विवेचन

* डॉ० सन्त प्रकाश तिवारी

संस्कृत वाङ्मय में विविध शास्त्र के शास्त्रज्ञों के अनुसार राज्य के सात अंग बतलाये गये हैं– (१) स्वामी (शासक), (२) अमात्य, (३) जनपद या राष्ट्र, (४) दुर्ग (सुरक्षित नगर अथवा राजधानी), (५) कोश (शासक के कोश मे द्रव्य राशि), (६) दण्ड (सेना) (७) मित्र।[1] कौटिल्य ने तो राजा को ही संक्षेप में राज्य की संज्ञा दे डाली है।[2] कौटिल्य ने स्पष्ट रूप से निरूपित किया है कि मन्त्रिमण्डल, अधीक्षक तथा कर्मचारियों की नियुक्ति राजा ही करता है। वही संकटकालीन स्थिति में संकट से बचने का उपाय करता है। यदि राजा शक्ति सम्पन्न और बुद्धिमान् है तो वह अपनी प्रकृतियों को समृद्धि प्रदान करता है। शुक्रनीति के अनुसार यदि राजा मनमाना कार्य करता है तो इससे राज्य पर विपत्तियाँ आती हैं मन्त्रियों की हानि होती है अन्त में राज्य का नाश होता है।

शुक्रनीति में राज्य के सप्तांगों की तुलना शरीर के अंगों से की गयी है। जैसे– राजा सिर है, मन्त्री आँखें, मित्र कान, कोश मुख, सैन्यशक्ति मन, राज्य एवं राष्ट्र हाथ एवं पैर हैं। कामन्दक ने नीतिसार में उल्लेख किया है कि सातों अंग एक दूसरे के पूरक हैं, यदि एक भी अंग दोषपूर्ण हुआ तो राज्य के लिए हानिकारक हो सकता है।[3] मनु एवं महाभारत ने राज्य के अंगों में स्वाभाविक एकता देखी है। सभी अंगों को लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक दूसरे के साथ मिलकर कार्यशील होना ही होगा। सभी अंग महत्त्वपूर्ण हैं, कोई दूसरे से हीन नहीं है, एक की महत्ता अपने स्थान पर है वह दूसरे से बढ़कर नहीं है।[4] संस्कृत वाङ्मय में समुपलब्ध शासन एवं प्रशासन की दृष्टि से शासन के सप्तांगों का विवेचन निम्न प्रकार है–

1. स्वामी (शासक)

संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थों में स्वामी अथवा शासक पर बल

* अतिथि प्रवक्ता, संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

दिया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख किया गया है कि देवों ने राजा के न रहने पर अपनी दुर्दशा देखी और फिर एकमत होकर उसका चुनाव किया।[5] इससे स्पष्ट होता है कि समसामयिक आवश्यकताओं ने स्वामित्व अथवा शासन प्रणाली को जन्म दिया। मनुस्मृति तथा शुक्रनीतिसार में कहा गया है कि "जब सभी व्याकुल हो इधर–उधर दौड़ने लगे और विश्व में कोई स्वामी नहीं था तब विधाता ने इस विश्व की रक्षा के लिए स्वामी का प्रणयन किया।"[6] आचार्य कौटिल्य का कथन है कि "स्वामी के अभाव में मात्स्य न्याय (बड़ी मछलियों का छोटी को निगल जाना) की दशा उत्पन्न हो जाती है क्योंकि शासक के अभाव में बलवान दुर्बल को कष्ट पहुंचाने लगता है। कौटिल्य ने यह भी कहा है कि मात्स न्याय से अभिभूत होकर लोगों ने मनु वैवस्वत को अपना राजा बनाया।[7] बाल्मीकि रामायण में महर्षि बाल्मीकि कहते हैं–

मत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्ति परस्परम्।[8]

महाभारत में निम्न प्रकार से उल्लेख किया गया है–

दण्डश्चेन्न भवेल्लोके विनश्येयुरिमाः प्रजाः।
जले मत्स्यानिवाभक्ष्यन्दुर्बलं बलवत्तराः।।[9]

आचार्य कामन्दक ने निम्न प्रकार से उल्लेख किया है–

दण्डाभावे परिध्वंसी मात्स्यो न्यायः प्रवर्तते।[10]

राजकीय व्यापार की महत्ता को द्योतित करने के लिए भी संस्कृत वाङ्मय के ग्रन्थों में उल्लेख है कि राजा में देवों के अंश होते हैं। आचार्य मनु ने स्पष्ट किया किया है कि "विधाता ने इन्द्र, मरुत, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र, एवं कुबेर के प्रमुख अंशों से युक्त राजा की रचना की, अतः वह (शासक) राज महिमा के कारण सभी जीवों में आगे बढ़ जाता है"[11]

राजा के गुण–

संस्कृत वाङ्मय के अनुसार राजा को शक्तिमान् दयालु दूसरों के अतीत कर्मों का जानकार, तप, ज्ञान एवं अनुभव वालों पर आश्रित, अनुशासित मन वाला, अच्छे बुरे भाग्य में समान भाव से रहने वाला, अच्छे मातृकुल एवं पितृकुल वाला, सत्यवादी, मन एवं देह से पवित्र, कार्यपटु,

शक्तिशाली, स्मृतिमान् वचन एवं कर्म में मृदु, वर्णाश्रम धर्म के नियमों का पालक, दुष्कर्मों से दूर रहने वाला, मेधावी, साहसी रहस्य गोपनीय रखने में चतुर, राज्य के दुर्बल स्थलों की रक्षा करने वाला, शासनशास्त्र एवं अर्थशास्त्र एवं तीनों वेदों में प्रशिक्षित होना चाहिए। उसे ब्राह्मणों के प्रति सहनशील मित्रों के प्रति सरल शत्रुओं के प्रति क्रूर एवं सेवकों तथा प्रजा के प्रति पितृवत् रहना चाहिए।[12]

2. अमात्य (मंत्रिमण्डल)

राज्य के सात अंगों में दूसरा अमात्य है जिसे हम सचिव या मंत्री भी कहते हैं। आरम्भिक रूप में इसका प्रयोग ऋग्वेद में प्राप्त होता है। "हे अग्नि मन्त्रियों के साथ ही हाथी पर चढ़े हुए राजा के समान जाओ।"[13] राजा को अपने गुरुओं एवं मन्त्रियों से ज्यादा सुखपूर्वक जीवन नहीं जीना चाहिए। कौटिल्य का कहना है कि राजत्व–पद सहायकों की मदद से सम्भव है केवल एक पहिया कार्यशील नहीं होता, अतः राजा को चाहिए कि वह मन्त्रियों की नियुक्ति करे और उनकी सम्मतियाँ सुने।[14] मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की संख्या के विषय में बहुत प्राचीन काल से ही मतभेद रहा है। कौटिल्य एवं कामन्दक का कहना है कि मानव सम्प्रदाय के अनुसार मन्त्रि परिषद् में १२ अमात्य होते हैं, बार्हस्पत्यों के अनुसार १३ औशनसों के अनुसार २०। मनुस्मृति के अनुसार राजा की वंशपरम्परागत, शास्त्रों में प्रवीण, वीर, उच्च कुलोत्पन्न एवं भलीभाँति परीक्षित ७ या ८ व्यक्तियों को चुन लेना चाहिए।[15] आठ प्रधान मन्त्रियों में– मुख्य प्रधान (प्रधानमंत्री), पन्त अमात्य (वित्तमंत्री), पन्त सचिव (आय–व्यय निरीक्षक), सेनापति (राजा के व्यक्तिगत कार्यों का प्रभारी), सुमन्त (विदेशमंत्री), पण्डितराव (धार्मिक बातों का प्रभारी) एवं न्यायाधीश। मन्त्रिपरिषद् से एकान्त में परामर्श लेना उचित माना जाता है। मन्त्रियों से परामर्श लेने के पश्चात् ही शासन सम्बन्धी कार्य का आरम्भ करना चाहिए।

3. राष्ट्र

ऋग्वेद में राष्ट्र शब्द का प्रयोग आया है– मेरा राष्ट्र दोनों ओर है।[16] वरुण को राष्ट्रों का स्वामी भी कहा गया है[17] तैत्तिरीय संहिता में आशीर्वचन

आया है– "इस राष्ट्र में राजा शूर, महारथी और धनुर्धर हो।"[18] कामन्दकीय नीतिसार के अनुसार राज्य के सभी अंगो का उद्भव राष्ट्र से होता है अतः राजा को सभी सम्भव प्रयत्नों द्वारा राष्ट्र की वृद्धि करनी चाहिए।[19] अग्नि पुराण के अनुसार राज्य के सभी अंगों में राष्ट्र सर्वश्रेष्ठ है। कामन्दक ने उल्लेख किया है कि "राजा के राष्ट्र की समृद्धि इसकी मिट्टी के गुणों पर निर्भर रहती है, राष्ट्र–समृद्धि से राजा की समृद्धि होती है, अतः राजा को चाहिए कि वह समृद्धि के लिए अच्छे गुणों से युक्त ऐसी भूमि का चुनाव करे, जिससे प्रचुर अन्न उपजता हो जहाँ खनिज हो जहाँ व्यापार हो सके, खानों तथा अन्य वस्तुओं की भरमार हो, जहाँ पशु–पालन हो सके, प्रचुर जल हो, जहाँ संसाधनों की व्यवस्था हो सके केवल वर्षा के जल पर निर्भर न रहना पड़े"[20] राष्ट्र का निर्माण वहाँ करना चाहिए जहाँ जीविका के साधन सरलता से उत्पन्न हो सकें, जहाँ की मिट्टी अच्छे गुणों से वाली हो, जहाँ पर्याप्त मात्रा में जल हों, जहाँ पर्वत मालाएँ हों, जहाँ व्यापारी अधिक संख्या में हों, जहाँ कृषक विशेष रुचि रखते हों जो राजा के प्रति सत्य या अनुकूल तथा शत्रु के प्रति प्रतिकूल हों तथा विपत्तियों एवं कर के भार को वहन कर सकें। जो अति विस्तृत हो जहाँ देश विदेश के व्यक्ति निवास करते हों।

4. दुर्ग (राजधानी)

समृद्ध राष्ट्र के निर्माण के चौथा महत्त्वपूर्ण अंग है दुर्ग अथवा राजधानी। राजधानी देश की सम्पत्ति का दर्पण थी और यदि वह ऊँची–ऊँची दीवारों से सुदृढ़ रहती थी तो सुरक्षा का कार्य भी करती थी। याज्ञवल्क्य का कथन है कि दुर्ग की स्थिति से राजा की सुरक्षा, प्रजा एवं कोश की रक्षा होती है। महाराज मनु ने दुर्ग के निर्माण का कारण भली–भाँति बताया है, दुर्ग में अवस्थित एक धनुर्धर सौ धनुर्धरों को तथा सौ धनुर्धर एक सहस्र धनुर्धरों को मार गिरा सकते हैं। कौटिल्य ने दुर्गों के निर्माण तथा उनमें से किसी एक को राजधानी बनाने के विषय में सविस्तार से उल्लेख किया है। यथा– औदक– जिसके चारों ओर जल हो, पर्वत– पहाड़ी या गुफा वाला, धान्वन– मरुभूमि वाला जहाँ झाड़–झंखाड़ हो तथा वनदुर्ग जहाँ बेंत और बाँस के झुण्ड हों।[21] रामायण तथा महाभारत में प्रकारों,

तोरणों, अट्टालिकाओं, उपकुल्याओं आदि का उल्लेख राजधानियों के सन्दर्भ में पाया जाता है।

5. कोश

कोश विहीन राजा प्रजा के लिए हानिकारक सिद्ध होता है। कौटिल्य का कथन है कि राज्य के सारे व्यापार कोश पर आधारित हैं। अतः राजा को सर्वप्रथम कोश पर ध्यान देना चाहिए।[22] प्राचीन भारत के भारतीय राज्यों के दो स्तम्भ थे, राजस्वबल, सैन्यबल। मनु का कथन है कि राज्य का कोश एवं शासन राजा पर निर्भर रहता है, अर्थात् राजा को उन पर व्यक्तिगत ध्यान देना चाहिए। कोश को भरने के लिए कामन्दक ने अनेक विधान बताये हैं– कृषि, जल स्थल के मार्ग, राजधानी, जलों के बाँध, हाथियों को पकड़ना, खानों में काम करना–सोना एकत्र करना, धनिकों से धन उगाहना, निर्जन स्थानों में नगरों एवं ग्रामों को बसाना। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के भी स्रोत कोश के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु थे।

6. बल (सैन्यशक्ति)

ऋग्वेद में सेना अस्त्र–शस्त्रों, युद्धों आदि का वर्णन कई बार हुआ है। सेनानी शब्द ऋग्वेद में आया है यहाँ युद्ध कोश को सेनानी होने के लिए पुकारा गया है।[23] ऋग्वेद में धनुषों बाणों, कवच, प्रत्यंचाओं, सारथियों, अस्त्रों रथों आदि की चर्चा हुई है। कामन्दक नीतिसार में उल्लेख किया गया है कि परिपूर्ण कोश के रहने पर राजा अपनी क्षीण सेना बढ़ाता है, अपने प्रजा की रक्षा करता है और उस पर उसके शत्रुगण भी आश्रित रहते हैं। बलशाली सेना से मित्रों की सम्पत्ति तथा स्वयं राजा के राज्य की सीमाएँ बढ़ती हैं। अधिकांश आचार्यों के मत में सेनाएँ छः प्रकार की होती हैं। यथा मौल (वंशपरम्परानुगत), भृत या भृतक या भृत्य (वेतन पर रखे गये सैनिकों का दल), श्रेणी (वणिकों या अन्य जन समुदायों की सेना), मित्र (मित्रों या सामन्तों की सेना), अमित्र (ऐसी सेना जो कभी शत्रुपक्ष की थी), अटवी (जंगली जातियों की सेना)। सेना के चार भाग होते थे, हस्ती, अश्व, रथ, एवं पैदल और इस प्रकार की सेना की संज्ञा चतुरंगिणी थी। महाभारत के

शांतिपर्व में सेना के छः अंगों का उल्लेख किया गया है हस्ती, अश्व, रथ, पदाति, कोश एवं आवागमन के मार्ग। कौटिल्य और कामन्दक के मत से शत्रुनाश हाथियों पर निर्भर रहता है।[24]

7. सुहृद या मित्र

मनु ने मित्र बनाने की आवश्यकता पर बहुत बल दिया है।[25] राजा के लिये अच्छे मित्र के गुणों का वर्णन किया है– राजा सोना एवं भूमि पाकर उतना समृद्धिशाली नहीं होता, जितना की अटल मित्र पाकर, भले ही वह (मित्र) कम धन (कोश) वाला हो, क्योकि भविष्य में वह शक्तिशाली हो जायेगा। एक दुर्बल मित्र भी श्लाघनीय है यदि वह गुणवान् एवं कृतज्ञ हो, मनु के मत से भूमि सोना एवं मित्र राजा की नीति या प्रयत्नों के तीन फल हैं। याज्ञवल्क्य ने भी मनु की बात का समर्थन किया है। महाभारत में उल्लेख है कि कोई भी किसी का न मित्र है न शत्रु। मित्र एवं शत्रु धन के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं।[26]

इस प्रकार संस्कृत वाङ्मय में शासन एवं प्रशासन के लिए सुदृढ़ एवं सुन्दर विवेचन मिलते प्राप्त होता है।

सन्दर्भ –

1. स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा। सप्त प्रकृतयो ह्येताः सप्तागं राज्यमुच्यते। मनु० 9/294, स्वाम्यमात्यजनदुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः। अर्थशास्त्र 6/1, स्वाम्यमात्यौ जनो दुर्ग कोशो दण्डस्तथैव च। मित्राण्येताः प्रकृतयो राज्यं सप्तांगमुच्यते।। याज्ञवल्क्य 1/353।
2. तत्कूटस्थानीयो हि स्वामीति। अर्थशास्त्र 8/1, राजा राज्यमिति प्रकृतिसंक्षेपः। वही 8/2, सप्तांगस्येह राज्यस्य विशिष्टब्धस्य त्रिदण्डवत्। अन्योन्यगुणवैशेष्यान्न किंचिदतिरिच्यते।। तेषु–तेषु तु कृत्येषु तत्तदगं विशिष्यते। येन यत्याध्यते कार्यं तत्तस्मिन् श्रेष्ठमुच्यते।। मनुस्मृति 9/296–297, सप्तांग मुच्यते राज्यं तत्र मूर्धा नृपः स्मृतः। दृगमात्यः सुहृच्छोत्रं मुख कोषो बलं मनः।। हस्तौ पादौ दुर्गराष्ट्रौ०– शुक्रनीति 1/61–62।
3. कामन्दकीय नीतिसार 4/1–2।

4. सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यासां यथाक्रमम्। पूर्वं पूर्वं गुरुतरं जानीयाद्व्यसनं महत्।। मनुस्मृति 9/295।
5. ऐतरेय ब्राह्मण 1/14।
6. अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात्। रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः।। मनुस्मृति 7/3, शुक्रनीतिसार 1/71।
7. अप्रणीता हि मात्यन्यायमुद्भावयति। बलीयान बलं हि ग्रसते दण्डधराभावे। अर्थशास्त्र 1/4 मात्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा मनु वैवस्वतं राजानं चक्रिरे। वही 1/13।
8. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण 2/67/31।
9. महाभारत शान्तिपर्व 15/30।
10. कामन्दकीय नीतिसार 2/4०।
11. इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेयश्च वरुणस्य च। चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वती।। मनु० 7/4।
12. स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद् भृशदण्डश्च शत्रुषु। सुहृत्स्वजिह्मः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः।।
    इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम्। जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः।। मनु० 7/32–44, अर्थशास्त्र 6/1, याज्ञवल्क्यस्मृति 1/309–311, शुक्रनीति 1/73–86।
13. णुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवां इभेन। ऋग्वेद 4/4/1, याहि राजा इभेव अमात्यवान् अभ्यमनवान् स्ववान् वा। निरुक्त 6/12।
14. अर्थशास्त्र 1/7।
15. मौलांछस्त्रविदः शूराँल्लब्धलक्षान्कुलोद्भवान्। सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्।। मनुस्मृति 7/54।
16. "मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य" ऋग्वेद 4/42/1।
17. राजा राष्ट्राणाम् वही 7/34/11।
18. आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायमास्मिन् राष्ट्रे राजन्य इषव्यः शूरा

महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्ध्रिर्योशाजिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलिन्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्। तैत्तिरीय संहिता 7/5/18/1।

19. कामन्दकीय नीतिसार 6/3।
20. कामन्दकीय नीतिसार 4/50/56।
21. अर्थशास्त्र 2/3–4।
22. कोशमूलाः कोशपूर्वाः सर्वारम्भाः। तस्मात्पूर्वं कोशमवेक्षेत। अर्थशास्त्र 2/2।
23. अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि। ऋग्वेद 10/84/2।
24. हस्तिप्रधानो विजयो राज्ञाम्। अर्थशास्त्र 2/2।
25. हिरण्यभूमिसम्प्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते। यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम्।। मनुस्मृति 7/208।
26. न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचित्सुहृत्। अर्थतस्तु निबन्ध्यन्ते मित्राणि रिपवस्तथा।। महाभारत शान्ति पर्व 138/11०।